ब्रिटिशकालीन भू–राजस्व व्यवस्थाएँ

ब्रिटिश काल के दौरान कृषि-भूमि से संबंधित संरचना के तीन स्वरूप स्पष्ट क्रियाशील थे, जिन्होनें कृषि क्षेत्र में उत्पादन, वितरण विनियम और उपभोग को निर्णायक रूप से प्रभावित किया। उनका असर सामाजिक-आर्थिक जीवन के अन्य क्षेत्रों और भागों पर भी पड़ा। उन्होंने भूमि के साथ ग्रामीण जनता के विभिन्न भागों के संबंधों को निर्धारित किया और इस प्रकार पैदावार में उनके हिस्सों तथा विनियोजन के तौर तरीकों को तय किया।

यद्यपि परस्पर व्यापन और स्थानीय रीति-रिवाजों के समावेश के उदाहरण भी मिलते हैं, फिर भी ब्रिटिश काल के दौरान तीन प्रकार की भूधृति प्रणालियां स्पष्ट तौर पर दीखती थीं। वे थीं : स्थायी बंदोबस्त अथवा दमामी बंदोबस्त, रैयतवारी बंदोबस्त और महालवारी बंदोबस्त।

स्थायी बंदोबस्त :–

यह अंग्रेजों द्वारा लागू किया गया सबसे पहला इंतजाम था। इसके बंगाल, बिहार, उड़ीसा और यू.पी. तथा अन्य भागों के कुछ जिले थे। इसका अस्तित्व १६५० के दशक के आरंभिक वर्षों तक रहा।

कंपनी ने १७६५ और १७८६ के बीच अनेक व्यवस्थाओं के संबंध में प्रयोग किए परंतु उनसे कोई सार्थक परिणाम प्राप्त होने के बदले कई भ्रांतियाँ और उलझने पैदा हो गई और वे पूरी तरह से असंतोषजनक सिद्ध हुईं। बसूली-लागत को घटाने तथा समय पर राजस्व प्राप्त करनें के उद्देश्य पूरे नहीं हो सके और न ही भू-राजस्व क्षमता के विश्वसनीय आकलन ही मिल पाए।

जहां तक रैयतो का सवाल था उनके परंपरागत अधिकारों और विशेषताओं को पूरी सुरक्षा प्रदान की जानी थी। इस उद्देश्य से किसानों को जमींदारों द्वारा पट्टा दिया जाना था। पट्टा एक लिखित दस्तावेज था जिसमें रैयत की जोत के बारे में सभी ब्यौरे शामिल थे। पट्टा पाने वाले रैयत की लगान निश्चित रहती थी और उसे जमींदार मनमाने ढंग से बेदखल नहीं कर सकता था। इसके अलावा वह उत्पादन संबंधी निर्णय में स्वतंत्र था। इस तरह स्थायी बंदोबस्त के सूत्रधार पट्टा संबंधी विनियमों के द्वारा यह सुनिश्चित करना चाहते थे कि बढ़े हुए उत्पादन के लाभ रैयतों को ही मिलें। उनको आशा थी कि इससे रैयत निवेश कार्यो में दिलचस्पी लेंगे जिससे कृषि उत्पादन बढ़ेगा। चूंकि रैयत से जमींदार की लगान संबंधी मांग को सीमित करने और अबवाब (गैर कानूनी उपकर) लगाने पर पाबंदी लगाने की कोशिश की गई इसलिए उम्मीद थी कि ब्रिटेन में बनी वस्तुओं की मांग बढ़ेगी। संक्षेप में यही था स्थायी बंदोबस्त लागू करने के निर्णय का आधार। शुरू में, १७८६ में, जमींदारों के साथ इस विचार से एक दससाला बंदोबस्ती की गई कि अंततः उसको स्थायी कर दिया जाएगा। चार वर्ष बाद ही इस बंदोबस्त को स्थायी घोषित कर दिया गया।

जिन जमींदारों के साथ बंदोबस्ती हुई, उन्हें जमीन के ऊपर स्वामित्व के अधिकार को दिया गया। इन विनियमों का उद्देश्य अपनी जोतों पर रैयतों के अधिकार को तब तक बनाए रखना था जब तक वे अपनी लगान अदा करते रहें।

भू-राजस्व की सरकारी मांग को आम तौर से तत्कालीन लगान राशि का १०/११ तय किया गया और उसे उसी राशि पर सदा के लिए स्थिर कर दिया गया। साथ ही जमींदारों से अपेक्षा की गई कि वे भू-राजस्व की सरकार मांग का भुगतान हर हालत में नियमित रूप से निर्धारित समय पर करेंगे।

जमींदारों के मामलों से इन लोगों का कोई सीधा लगाव नहीं था। इन्होने उनका प्रबंध नौकरों या स्थायी और अस्थायी भूधृति धारकों के द्वारा करना शुरू किया न सिर्फ ये लोग बल्कि अधिकतर पुराने जमींदार भी वस्तुतः दरस्थ भू-स्वामी बन गए। यदि इन लोगों का निवास अपनी जमींदारियों के क्षेत्र में

होता था तो भी वे अपनी जमींदारियों के प्रबंध में कोई सक्रिय दिलचस्पी नहीं लेते थे।

अधिंकाश जमीदारों ने अपनी आय गैर–उत्पादक मदों पर खर्च की। उनकी प्रवृति तड़क–भड़क से रहने और वह दिखलाने की थी देशी रियासतों के शासक से नीचे नहीं हैं। उन्होनें आए दिन मंदिरों के निर्माण और उनकी सजावट पर बहुत पैसे खर्च किए। उन्होंने मंदिरों के नाम काफी जायदाद भी की। प्रिय पात्रों को गांव के गांव उपहार में दे डाले। शराब, नृत्यांगनाओं, उत्सवों और मनोरंजन पर भारी रकमें व्यय की गई। इन खर्चों के कारण वे कर्ज के भारी बोझ से लद गए। उनमें से किसी ने भी अपनी आय का कोई महत्वपूर्ण भाग कृषि की उन्नति या उद्योग और वाणिज्य के विकास पर नहीं खर्च किया। उनके द्वारा हस्तगत आर्थिक अधिशेष की बरबादी काफी हद तक यह स्पष्ट करती है कि स्थायी बंदोबस्त वाले इलाके कृषि और उद्योग, दोनों, में क्यों पिछड़ गए।

स्थायी बंदोबस्त का विस्तार बंगाल और बिहार के बाहर भी किया गया। उसे वर्तमान पूर्वी उत्तरप्रदेश के बलिया, गाजीपुर और वाराणसी जैसे जिलों तथा तमिलनाडु के कुछ भागों में लागू किया गया। किंतु बंगाल और बिहार की तुलना में एक भिन्नता थी। इन इलाकों में बंगाल और बिहार की तरह जमींदारियों की बकाया भू–राजस्व के लिए नीलामी के बाद उन्हें स्थायी रूप से खरीददार के साथ बंदोबस्ती की कानूनी बाध्यता नहीं थी। इसलिए जब सदी के शुरू में अनगिनत कृत्रिम भू–संपतियों और अन्य नई जमींदारियों की विफलता के बाद कोई अन्य व्यवस्था करनी पड़ी तब उन्हें सिर्फ किन्हीं अन्य रैयतवारी भू–संपत्तियों जैसा मानने के रास्तें में कोई रूकावट नहीं थी। यही कारण है कि उन जिलों में जहां अधिकतर भू–संपत्तियां स्थायी बंदोबसत के अंतर्गत हैं वहीं काफी बड़ा भू–भाग रैयतवारी भू–संपत्तियों के तहत भी है।

<u>रैयतवाड़ी व्यवस्था :</u>

रैयतवारी बंदोबस्ती की शुरूआत वर्तमान तमिलनाडु के बारामहाल में १९वीं सदी के प्रथम दशक में हुई। जब इस क्षेत्र को कैप्टेन रीड और टामस मुनरो ने हथियाया तब उनसे भू–राजस्व की बंदोबस्ती के लिए कहा गया। ‘उनके द्वारा बनाई गई योजना की आधुनिक प्रणाली के साथ बहुत कम समानता थी, फिर भी उसमें निःसंदेह पृथक जोतों से निपटने, तथा व्यक्ति विशेष के लिए भुगतान की व्यवस्था करने के बदले भूमि के लिए एक दर निर्धारित करने की उस विधि के मूलतत्व शामिल थे जिसे हम रैयतवारी बंदोबस्ती की प्रणाली कहते है।

रैयतवारी बंदोबस्ती १८५५–५८ के दौरान ही बड़े पैमाने पर आरंभ हुई, हालांकि ईस्ट इंडिया कंपनी के संचालक मंडल ने इस प्रणाली को लागू करने के लिए दिसम्बर १८१२ में ही हरी झंडी दिखला दी थी। भू–राजस्व की बंदोबस्ती हरेक रैयत के साथ अलग–अलग और केवल एक सीमित अवधि के लिए ही की गई और इस अवधि की समाप्ति के बाद उसे संशोधित किया गया। किसी भी प्रकार के परजीवी बिचौलियों या मध्यवर्ती लोगों के लिए कोई स्थान नहीं था और रैयतों का सरकार के साथ सीधा संबंध था। हर खेत का सर्वेक्षण किया गया। इस कार्य के लिए पृथक सर्वेक्षण कर्मचारी थे। सब जोतों के संबंध में एक विवरणात्मक रजिस्टर के साथ–साथ संबद्ध गांव का भूकर मानचित्र तैयार किया गया। इसके बाद बंदोबस्ती कर्मचारियों ने गांवों को समूहों में बांटा, मिट्टी का वर्गीकरण किया और राजस्व मांग का निर्धारण किया। चूँकि अधिकतर स्थितियों में जोत पर काबिज व्यक्ति ही उसका मालिक था, इसलिए काफी हद तक बंदोबस्ती के अभिलेखों से उसके अधिकार की पुष्टि हो गई।

सिद्धांततः लगान की निर्धारित राशि ५० प्रतिशत निवल उत्पादन से अधिक नहीं होनी चाहिए थी। निवल उत्पादन के निर्धारण के लिए सकल उत्पादन का आकलन कर उसका मूल्य औसम कीमतों पर निकाला जाता था। औसत कीमतें तय करने के लिए बंदोबस्ती से पीछे के २० गैर अकाल वाले वर्षों की कीमतों की तालिकाएँ तैयार की जाती थीं और परिवहन की लागतों तथा स्थानीय और बाजार कीमतों के बीच अंतर पर भी ध्यान दिया जाता था। सकल उत्पादन के मूल्य से खेती की लागतों को घटा दिया जाता था। तब जो कुछ बचता था वह निवल उत्पादन का मूल्य होता था। अनेक स्थितियों में हिसाब काफी परिश्रम से लगाना पड़ता था। पहला प्रश्न था कि किस ‘उत्पादन’ को गणना में लिया जाए क्योंकि अलग–अलग खेतों में अलग–अलग फसलें होती है। ऐसा औसत या मानक उत्पादन लिया जाता था जो

पूरे तालुके की खेती का उचित प्रतिनिधित्व करता हो; इस सिलसिले में अभिलिखित आंकड़े मार्गदर्शन करते थे। वे दिखलाते थे कि संपूर्ण तालुके का कितना प्रतिशत किस प्रकार के अनाज की खेती में लगा हुआ है। खाद्यान्नों पर हमेशा विचार किया गया; अन्य फसलों को उनके तथा खाद्यान्नों के मूल्यों के बीच तुलना के आधार पर शामिल किया जा सकता था।

चूँकि भू-राजस्व निर्धारण तीस वर्षों के लिए होता था, इसलिए इस अवधि के दौरान कीमतों में गिरावट से रैयत की हालत बदतर हो जाती थी। १८२५-२६ और १८५३-५४ के बीच कीमतों में लगातार गिरावट से उन पर बोझ बढ़ा।

सैद्धांतिक दृष्टि से किसान और सरकार के बीच रैयतबाढ़ी बंदोबस्ती के अंतर्गत किसी भी प्रकार के बिचौलिए के लिए कोई जगह नहीं थी क्योंकि भूमि की बंदोबस्ती किसान के साथ होती थी उसी के नाम में उसे दर्ज किया जाता था। किंतु व्यवहार में बिचौलिए पनपे और भूस्वामी-रैयत संबंध की समस्या उभरी। बिचौलियों का उदय मुख्यतया दो तरह से हुआ। यदि मूल स्वत्वाधिकारी या उसका उत्तराधिकारी किसी कारणवश जमीन पर खेती करना बंद कर देता या उसे बटाई पर लगा देता तो नए रैयत-खेतिहर का न तो सरकार से सीधा संबंध रह जाता था और न ही भू-स्वामी के ऊपर उसका कोई कानूनी अधिकार होता था। द्वितीय, यदि भूस्वामी-खेतिहर, उदाहरणार्थ ऋण चुकाने के लिए अपना स्वत्वाधिकार हस्तांतरित करना आवश्यक समझता था तो नया भूस्वामी स्वयं खेती नहीं करता था बल्कि पिछले भू-स्वामी को ही रैयत के रूप में खेत जोतने की अनुमति दे देता था, ऐसे में भी इसी प्रकार की स्थिति होती थी। १६३५ तक मद्रास और बंबई के अनेक भागों में इन दोनों प्रक्रियाओं के कारण लगभग एक सदी हो गई थी और उनके परिणामस्वरूप गैर-मौरूसी काश्तकारों का एक समूह पैदा हो गया था जो दोनो प्रांतों के अनेक जिलों में काफी बड़ा था।

महालवाड़ी व्यवस्था :

महालवारी प्रणाली या बंदोबस्ती आगरा प्रांत अजमेर और पंजाब में लागू की गई। यह बंदोबस्ती पूरे महाल के साथ की गई। गांव के सह-भागीदारों के समूह को भू-स्वामी माना गया और उसे भू-राजस्व के भुगतान के लिए जिम्मेदार बनाया गया और प्रत्येक गांव या प्रत्येक पट्टी अथवा हिस्से के लिए किसी नेकनामी और प्रतिष्ठा सम्पन्न भागीदार ने मूलदायित्व लिया और उसने सारी समूह की ओर से राजस्व-आबंध पर हस्ताक्षर किया। ऐसे व्यक्ति को लंबरदार अथवा नंबरदार कहा गया।[६] इसके बाद कुल राजस्व निर्धारण को सहभागीदारों के बीच बंदोबस्ती अधिकारी की देख-रेख में भू-संपतियों की हिस्सेदारी और संघटन के सिद्धांतों के अनुसार वितरित कर दिया गया।

बंदोबस्ती में दो प्रकार के काम शामिल थे। पहला, अधिकारों की छानबीन की गई और अभिलेख तैयार किए गए। दूसरा, भूमि का मूल्यांकन और राजस्व की राशि का निर्धारण हुआ तथा रैयतों के लगान समायोजित किए गए। इन सब कार्यों को पांच चरणों में पूरा किया गया। पहले चरण में संबद्ध गांव की बाहरी सरहदों को अंकित किया गया और जोतों की सीमाओं, भागों, काश्तकारियों, आदि को निर्धारित किया गया। जोतों पर अधिकार रखने वाले व्यक्तियों के नाम दर्ज किए गए और जहां कहीं भी कब्जे को लेकर विवाद पैदा हुआ वहां उसका निपटारा समुचित जांच-पड़ताल और, आवश्यक होने पर, न्यायालय के निर्णय के आधार पर किया गया। इसके बाद सर्वेक्षण हुए और भूकर मानचित्र और खसरा बनाए गए।

भू-राजस्व निर्धारण गांव की जोतों के वास्तविक लगान मूल्य पर आधारित था। लगान मूल्य 'प्रत्येक गांव में वास्तव में भुगतान किए जाने वाले लगान की दरों पर आधारित था। यहीं है शुद्ध सरल आगरा योजना। सेंट्रल प्राविंसेज में, अधिक पूर्ण समान लगान-भार लाने की आवश्यकता की दृष्टि से योजना को संशोधित कर लिया गया; क्योंकि, आगरा प्रांत में बंदोबस्ती के बाद, अंततोगत्वा, भुगतान किए गए लगान मुख्यतया भू-स्वामी और रैयत के बीच सहमति के परिणाम थे, जबकि सेंट्रल प्राविंसेज में सभी लगान तुरंत आने वाले वर्षों के लिए बंदोबस्ती अधिकारी द्वारा तय किए जाते थे, और इस प्रकार इस अधिकारी को तत्कालीन लगानों का निर्धारण न केवल राजस्व का हिसाब लगाने बल्कि रैयतों द्वारा परी अवधि के दौरान वास्तव में भुगतान किए जाने वाले उपर्युक्त लगानों के आधार के रूप में करना पड़ता था। फिर पंजाब में भी स्वयं मालिकों या पैदावार के रूप में लगान देने वाले रैयतों के हाथों में इतनी जमीन थी कि नकद लगान का हिसाब लगाने की

प्रत्यक्ष प्रक्रिया को नहीं अपनाया जा सकता; और यह आवश्यक है कि किसी भी निर्दिष्ट वर्ग की सभी जमीन के लिए उचित दर यत्र-तत्र वास्तविक नकद लगाने देने वाली कुछ नमूने की जोतों या उन जोतों के आधार पर निर्धारित की जाए जो पैदावार के रूप में लगान देती हैं परंतु वे वास्तविक लगान मूल्य का मुद्रा में मूल्यांकन के बाद प्रतिनिधित्व करेंगी।

रैयतवारी प्रणाली की तरह ही महालवारी प्रणाली भी बिचौलियों का उन्मूलन कर और राजस्व मांगों को स्थायी रूप से सीमित न कर सरकार की राजस्व प्राप्तियों को अधिकतम करने के उद्देश्य से प्रेरित थी। स्पष्टतया इससे किसानों का भला हुआ क्योंकि उन्हें एक विशाल फलते-फूलते परजीवी वर्ग का बोझ नहीं ढ़ोना पड़ा। किंतु आरंभ से ही भू-राजस्व की वसूली में बड़ी सख्ती बरती गई, जिससे काफी संख्या में मालिकाना जोतें बिक गई। अनेक महाजनों और व्यापारियों तथा शहरवासियों ने ऐसी जोतें खरीद लीं यद्यपि उनका खेती की प्रक्रिया में भाग लेने का कोई इरादा नहीं था।